शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 जनवरी 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

मल्टीप्लेक्स सिनेमा में स्त्री की सेल्युलाइड निर्मिति

डॉ. विजेन्द्र सिंह चौहान[1]
डॉ. नीलिमा चौहान[2]
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)[1]
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय
एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)[2]
ज़ाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (साँध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

भारतीय सिनेमा के हाल में पूरे हुए सौ वर्षों में पारसी रंगमंच से लेकर हालिया मल्टीप्लेक्स फिल्मों तक कई सोपान पार किए हैं। इस यात्रा में स्त्री की अनेक निर्मितियां-पुनर्निर्मितियां देखने को मिलती हैं। प्रस्तुत आलेख मल्टीप्लेक्स दौर में सेल्युलाइड स्त्री निर्मिति प्रक्रिया की विवेचनात्मक पड़ताल का प्रयास करता है। आलेख की प्रमुख प्राक्कल्पना है कि मल्टीप्लेक्स का अवतरण छोटे तथा लोचपूर्ण सिनेमा शो की संभावना को लेकर आया है तथा ये मात्र एक प्रौद्योगिकीय बदलाव भर नहीं है इसने सिनेमाई कंटेट डिलीवरी को 'बेंडवेगन प्रभाव' से मुक्त करने की दिशा में बढ़ाया है। सेटेलाइट आधारित फिल्म वितरण, छोटे आकार की सभागार क्षमताओं तथा सोशल मीडिया आधारित वेब 2.0 फिल्म समीक्षा ने फिल्म आस्वादन प्रक्रिया को ही नहीं वरन इसके कंटेट को भी प्रभावित किया है। प्रस्तुत आलेख कुछ हालिया फिल्मों जैसे डर्टी पिक्चर, क्वीन, इश्किया, चीनी कम आदि के विश्लेषण से यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि इन फिल्मों की स्त्री-निर्मिति अब तक की सेल्युलाइड स्त्री-निर्मिति से नितांत भिन्न है। यह भिन्नता उसकी सेक्सुएलिटी, स्वप्न, कामनाएं भाषा व नजरिए की भिन्नता है। आलेख यह भी प्रस्तावित करता है कि स्त्री-निर्मिति में यह बदलाव सिनेमाई कंटेट डिलीवरी के बदलाव, उसकी अर्थव्यवस्था के परिवर्तन व नवीन मीडिया माध्यमों के कारण संभव हो पाया है। आलेख इस प्रक्रिया पर कोई नैतिक कथन प्रस्तावित नहीं करता तथा चयनित फिल्मों के विश्लेषण की परिसीमित शोध प्रक्रिया पर आधारित है।

बीज शब्द : *फिल्म, हिन्दी, नारीवाद, सिनेमा, सिनेमाई निर्मिति*

प्रस्तावना

हिन्दी फिल्मों विशेषकर व्यावसायिक फिल्मों को भारत में पापुलर कल्चर के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उदाहरण की तरह देखा जाता है। विभिन्न ज्ञान-क्षेत्रों में फिल्मों के माध्यम से समाजशास्त्रीय अध्ययन की प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है। इस प्रकार के अध्ययनों की सामान्य पूर्वधारणा है कि समाज के परिवर्तन, व्यावसायिक फिल्मों की विषय वस्तु में प्रतिबिंबित होते हैं। यह पूर्वधारणा उन्हीं साहित्यिक सिद्धांतों का तार्किक विस्तार है,

जिसके तहत 'साहित्य समाज का दर्पण है' जैसी उक्तियाँ कही जाती रही हैं। किंतु सांस्कृतिक अध्ययनों में सामान्यतः इस तथ्य की उपेक्षा हुई है कि विषय-वस्तु व समाज के बीच कार्य-कारण शृंखला का यह संधान एक सरलीकृत पैमाना है। उदाहरण के लिए कला-उत्पाद की आस्वादन संरचना किस प्रकार विषय-वस्तु को प्रभावित करती है। इसकी पड़ताल सामान्यतः नहीं हो पाई है।

औसत-दर्शक प्रतिरूप का दबाब

भारतीय सिनेमा में 'राजा हरिश्चन्द्र' (1913 दादासाहेब फालके) से वर्तमान तक सिनेमा की आस्वादन प्रक्रिया यानि थिएटर जाकर फिल्म का आनंद लेने की प्रक्रिया जिन चरणों से गुजरती है उनमें मूक फिल्में, टाकीज़, रंगीन फिल्में, ईस्टमैन कलर आदि आते हैं। इन चरणों के दौरान सिनेमा में स्त्री की उपस्थिति निरंतर बनी रही है, किंतु उसकी छवि अथवा निर्मिति एकांगी नहीं रही है। इसमें आरंभ से ही एक विविधता देखने को मिलती है तथापि स्त्री की जो एक समवेत निर्मिति उभरती है उसका निर्धारण केवल फिल्मकार द्वारा नहीं हो रहा था वरना एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के जरिए एक 'औसत दर्शक' की अपेक्षा से अनुरूपता इसका निर्धारण करती रही है। इस स्थापना का मूल प्रस्ताव यह है कि सिने उपभोग का 'औसत उपभोक्ता' फिल्म निर्माण में अहम भूमिका अदा करता है। फिल्मों में सभी महत्त्वपूर्ण निर्मितियां यथा राष्ट्र, माँ, स्त्री, प्रेम आदि इसी औसत फिल्म उपभोक्ता के यथार्थ व स्वप्न के अनुरूप हुईं। चूंकि यह औसत उपभोक्ता वह मध्यवर्गीय पुरुष था जिसमें कतिपय अन्य नियामक विशेषताएं भी थीं। अतः स्त्री की छवि जो इसके दबाब में निर्मित हुई वह स्याह-सफेद के खाने में बंटी थी। यह काम्य स्त्री पति को पूजने वाली, निरंतर वफादार तथा उत्पीड़न को चुपचाप सह लेने वाली थी। दहेज (1950), गौरी (1968), देवी (1970), बीबी हो तो ऐसी (1988), पति परमेश्वर (1988) में यही रूप देखने को मिलता है। जैसे-जैसे आम सिनेमा उपभोक्ता का स्वरूप उसकी प्रोफाइल बदलती है हम पाते हैं कि स्त्री की सेल्युलाइड निर्मिति भी बदलती है।

एकल स्क्रीन सिनेमा में स्त्री निर्मिति

यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि 'सेल्युलाइड निर्मिति' पद का प्रयोग फिल्म अध्ययनों में रूढ़ हो चुके होने के कारण तथा नाटकीयता के उस स्वर को प्रतिबिंबित करने के लिए किया जा रहा है जो सिनेमा की विशिष्टता है अन्यथा सिने प्रिंट की सेटेलाइट आधारित डिजीटल क्तिरण व्यवस्था के अवतरण के पश्चात सेल्युलाइड एक फिल्मी माध्यम नहीं बचा है। अस्तु, स्त्री की सिनेमाई निर्मिति के विकास में जो बात अहम है वो यह कि वह औसत सिने दर्शक की अपेक्षा से टकराने का प्रयास नहीं करती अपितु उसके अनुरूप होने का प्रयास करती है। सिनेमा के जिस रूप में यह टकराव दिखता है वह 'समांतर सिनेमा' या 'आर्ट सिनेमा' करार दे दिया जाता है। यह पुनः रेखांकित करता है कि वहाँ औसत दर्शक का प्रोफाइल पूरी तरह बदल जाता है तथा तुलनात्मक रूप से अधिक संवेदनशील व शिक्षित बन जाता है। जाहिर है उसे स्वीकार्य स्त्री निर्मिति भी थोड़ी अलग हो जाती है। मंथन (1976), उत्सव (1984), रूदाली (1993), अर्धसत्य (1983) श्याम बेनेगल तथा बंगाली सिनेमा में सत्यजीत रे और ऋत्विक घटक की फिल्मों में हम इसके उदाहरण देख सकते हैं। तथापि इन फिल्मों के औसत दर्शक व मुख्यधारा

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जनवरी 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

फिल्मों के औसत दर्शक के बीच समरूपता लगभग कभी नहीं बन पाई।

एकल स्क्रीन बनाम मल्टीप्लेक्स : आस्वादांतरण

अतः नवें दशक के उत्तरार्ध तक का मुख्यधारा सिनेमा आस्वादन एक विशेष जड़बद्ध स्त्री छवि के अनुकूल रहता है। यह प्रक्षेपण, रंग अथवा ध्वनि के तकनीकी बदलावों के अनन्तर मुख्यतः एक ऐसी आस्वादन संरचना है जिसमें एक बड़ी स्क्रीन के सामने बड़े हॉल में, लगभग 1000 लोगों की क्षमता तक, दर्शकों के समक्ष फिल्म प्रस्तुति होती है। यह बिग स्क्रीन, एकल स्क्रीन आस्वादन है। सिनेमा हॉल में वर्गीय श्रेणीकरण टिकटों के दाम के आधार पर है जहां फ्रंट स्टॉल, मिडिल स्टॉल, ड्रेस सर्कल, बालकनी, और कभी-कभी बाक्स का वर्गीकरण है। 20 फीसदी सीटें फ्रंट स्टाल के लिए रखनी होती हैं जिनका दाम कम रखना सरकारी तौर पर अनिवार्य होता है। शो का समय पहले से तय होता है मार्निंग, नून, मैटिनी व नाईट शो। यह आस्वादन संरचना एक प्रकार का मिला-जुला दर्शक समुदाय खड़ा करती है। वर्ग व रुचि का एक तय रूप। ऐसे में औसत दर्शक की कल्पना ड्रेस सर्कल से कुछ आगे बैठे 25-30 वर्ष के पुरुष के रूप में की जा सकती है। यदि ऐतिहासिक रूप से देखें तो यह पारसी रंगमंच के औसत दर्शक का ही नवीन रूप भर है। इस प्रकार के बिग स्क्रीन की स्त्री निर्मिति के विषय में तमाम अध्ययन दो विशेषताओं की पहचान करते हैं **1** फिल्में एक सांस्कृतिक उत्पाद के रूप में हैं अतः समाज.संस्कृति में स्त्री भूमिका के परिवर्तन का फिल्मों में व्यक्त होना, तथा 2 स्त्री पात्रों की भूमिका में स्टीरियोटाईपिंग सिने आस्वादन प्रक्रिया में उपर्युक्त संरचना में बड़ा बदलाव हमें उदारीकरण भूमंडलीकरण के दौरान देखने को मिलता है जहां महानगरीय सिनेमा का ढांचा ही बदलना शुरू होता है। एक के बाद एक बड़े सिनेमाघर बंद होने शुरू होते हैं अथवा उन्हें दर्शक मिलने कम होते जाते हैं। इनका स्थान एक भिन्न संरचना लेती है। यह एक ही स्थान पर एकाधिक स्क्रीन के अलग-अलग आकार के सभागार की योजना है। मल्टीप्लेक्स सिने उपभोग का एक वैकल्पिक मॉडल है जो मूलतः अमेरिका से अस्सी के दशक के मध्य में इंग्लैंड पंहुचता है तथा वहां के सिनेमा उद्योग का तारणहार बनता है। भारत में इसका अवतरण नई आर्थिक नीति के फलस्वरूप होता है। शो के समय में विविधताए स्वच्छ व सुविधापूर्ण व्यवस्था, महँगी टिकट दर, सस्ती टिकट वाले फ्रंट स्टाल की विदाई, खानपान व भोजन... कुल मिलाकर फिल्म उपभोग के पूरे ढर्रे को बदलकर उसे उच्च मध्यवर्गीय परिघटना बना दिया गया है। शेष तबके के दर्शकों को अन्य सिनमाघरों का रुख करने की सलाह दी गई।

मल्टीप्लेक्स सिनेमा के अवतरण ने 'औसत दर्शक' की संकल्पना में बड़ा बदलाव किया है। इस दर्शक की प्रोफाइल एकल स्क्रीन दर्शक से भिन्न है। चूंकि संख्या के अंतर के बावजूद फिल्म की आमदनी में मल्टीप्लेक्स दर्शक की हिस्सेदारी अधिक है तथा विदेशी बाजार के दर्शकों से इसकी रुचि की साझेदारी भी अधिक है अतः ऐसी फिल्मों का निर्माण शुरू हुआ जो प्रधानतः मल्टीप्लेक्स दर्शकों के लिए बनाई गई हैं। इनकी कथावस्तु व फिल्मांकन इन्हीं दर्शकों के लिए है। मल्टीप्लेक्स संरचना में ये भी जरूरी नहीं कि इन फिल्मों के देखने के लिए इनमें रुचि रखनेवाले 1000 दर्शक एक साथ चाहिए 100-150 सीट वाली स्क्रीन भी हैं जबकि अगर बड़ी

क्षमता का सभागर चाहिए हो तो एक से अधिक स्क्रीन पर एक ही फिल्म चलाई जा सकती है। इसी प्रकार महिलाओं के लिए भी सुरक्षित समझे जाने के कारण वे अकेली या मित्र के साथ आ सकती हैं। आशय यह है कि भिन्न रुचि संस्कार का सिनेमा संभव हुआ है। समलैंगिकता, स्त्री अपराध, सेक्स, छोटी खुशियां, प्रेम के द्वंद्व, संघर्ष, स्त्री स्वप्न, विवाहेतर संबंध ... अब ये विषय जिन पर एकल स्क्रीन सिनेमा में फिल्म बनाकर व्यावसायिक सफलता कठिन थी, अब संभव हो गए।

मल्टीप्लेक्स सिनेमाई स्त्री

मल्टीप्लेक्स सिनेमा कही जा सकने वाली फिल्मों की सूची अब पर्याप्त लंबी है यदि कुछ का नामोल्लेख करें तो जॉगर्स पार्क (2003 अनंत बलानी), चीनी कम (2007 आर बलाकि), देव डी (2009 अनुराग कश्यप), इश्किया (2010 अभिषेक चौबे), डर्टी पिक्चर (2011 मिलन लुथरिया), इंग्लिश विंग्लिश (2012 गौरी शिंदे), लंच बाक्स (2013 रीतेश बतरा) पर चर्चा की जा सकती है। उल्लेखनीय है कि देश में अभी भी एकल स्क्रीन सिनेमा पर्याप्त संख्या में हैं। अतः दबंग, सिंघम आदि ब्लॉकबस्टर श्रेणी की फिल्में भी तैयार होती हैं। किंतु जहां तक बदलती स्त्री निर्मिति का प्रश्न है, मल्टीप्लेक्स फिल्मों में स्त्री की भूमिका जड़बद्ध से भिन्न रूप में दिखाई दे पाती है। 'इश्किया' में पति से इतर प्रेम, 'जागर्स पार्क', 'चीनी कम' में उम्र के परे संबंध, देह को लेकर लौकिक दृष्टि वाली देव डी.. यहाँ स्त्री की निर्मिति में जो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बदलाव दिखता है वह है स्त्री पर व्यष्टिगत दृष्टि।

इस आलेख में हमने भारतीय सिनेमा के विकास और उसमें स्त्री की निर्मिति की यात्रा का विवेचनात्मक अध्ययन किया है विशेषकर मल्टीप्लेक्स दौर में। हमने देखा कि मल्टीप्लेक्स सिनेमा ने छोटे और अधिक लोचपूर्ण सिनेमा शो की संभावनाओं को जन्म दिया है, जो केवल तकनीकी परिवर्तन से अधिक है। इसने सिनेमाई कंटेंट की डिलीवरी को बदल दिया है और उसे पारंपरिक 'बैंडवेगन प्रभाव' से मुक्त कर दिया है। सेटेलाइट और सोशल मीडिया आधारित वितरण और समीक्षा ने फिल्म आस्वादन और स्त्री निर्मिति की प्रक्रिया को प्रभावित किया है। हमने विभिन्न फिल्मों के विश्लेषण से यह स्थापित करने की कोशिश की है कि मल्टीप्लेक्स फिल्मों में स्त्री निर्मिति पहले की तुलना में बिल्कुल भिन्न है। इस भिन्नता का आधार स्त्री की सेक्सुएलिटी, स्वप्न, कामनाएं, भाषा और नजरिए में परिवर्तन है। इस बदलाव को नई आर्थिक नीतियों बदलती अर्थव्यवस्था और नवीन मीडिया माध्यमों के प्रभाव के रूप में देखा गया है। आलेख मे हमने ये भी देखा कि मल्टीप्लेक्स के आगमन ने 'औसत दर्शक' की संकल्पना में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। इसने फिल्मों की आमदनी और दर्शकों की रुचियों में भी बदलाव लाया है। फिल्मों की कथावस्तु और फिल्मांकन अब मल्टीप्लेक्स दर्शकों के अनुरूप हैं और इस प्रकार भिन्न रुचि और संस्कारों का सिनेमा संभव हो गया है। एकल स्क्रीन से मल्टीप्लेक्स की ओर संक्रमण ने स्त्री छवि की अपेक्षाओं के वर्गचरित्र में बदलाव लाया है और स्त्री की निर्मिति में द्वंद्व और शिथिल बंधनों का आभास दिया है। इस प्रकार यह आलेख मल्टीप्लेक्स दौर में स्त्री निर्मिति के परिवर्तन का विस्तृत और विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सिने आस्वादन संरचना में एकल.स्क्रीन से मल्टीप्लेक्स की ओर संक्रमण ने एक ओर जहां स्त्री छवि की अपेक्षाओं का वर्गचरित्र बदला है वहीं स्त्री की निर्मिति में द्वंद्व व शिथिल बंधन का आभास आरंभ हुआ है।

संदर्भ ग्रन्थ

- *निधि शेंदुर्निकर तेरे ज़ेंडर रिफ्लेक्शंस इन मेनस्ट्रीम हिन्दी सिनेमा, ग्लोबल मीडिया जर्नल, 2012*
- *बेगम सम एंड सिक्योरिटी गार्ड, आनन्द विवेक तनेजा, सरा, रीडर 2005, पृष्ठ 288*
- *Asma Ayob- "The changing construction of women characters in popular Hindi language Cinema" (2008)*
- *मानस चलन्तिका की टीकाए संजीव, बहुवचन, (http://lekhakmanch.com/मानस-चलन्तिका-टीका-के-मटम.html)*
- *Phil Hoad- "How multiplex cinemas saved the British Film Industry 25 years Ago, The Guardian 11/11/2010*
- *बेगम समरू एंड सिक्योरिटी गार्ड, आनन्द विवेक तनेजा, सरा, रीडर 2005, पृष्ठ 291*